

खस्ताहाल उच्च शिक्षा की चिंता करें

चुनावी-चर्चा में यह बात जोर-शोर से पृछी गयी कि पहली बार मतदाता बने 18-19 साल के करीब 10 करोड़ नौजवान केंद्र में किस पार्टी की सरकार देखना चाहेंगे. लेकिन यह सवाल शायद ही सामने आया कि नौजवानों के राजनीतिक रुझान को निर्णायक माननेवाली पार्टियां उनके भावी भविष्य के लिहाज से किस तरह के शिक्षा केंद्र मुहैया करायेंगी. आखिर 18-19 की उम्र कॉलेज जाने की होती है, जो जरूरी सवाल चुनावी-चर्चा में नहीं उठा, वह अब एक बड़ी खबर के रूप में सामने है. गुणवत्ता के लिहाज से रैंकिंग करनेवाली एक संस्था ने एशिया के शीर्ष 300 उच्च शिक्षा संस्थानों की सूची जारी की है, जिसमें भारत के मात्र 17 संस्थान हैं. संतोष की बात बस इतनी है कि पिछले साल के मुकाबले में यह संख्या कुछ बढ़ी है. लेकिन, उच्च शिक्षा के मोर्चे पर ऐसे किसी संतोष से काम चलाना घातक होगा. वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के भीतर भारत की बड़ी ताकत उसकी कुशल श्रमशक्ति है, जिसकी संभावनाएं काफी हद तक गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा पर निर्भर है. इसे हमारी उच्च शिक्षा की खस्ताहाली का प्रमाण कहा जायेगा कि एशिया के शीर्ष 50 संस्थानों में भारत के महज दो संस्थान हैं, जबकि आकार व आबादी के लिहाज से उन्हें से देश जापान के 13, होंगकांग व ताईवान में प्रत्येक के 6. अचरज नहीं कि जो मेधावी या महत्वाकांक्षी विद्यार्थी खर्च उठाने में सक्षम हैं, वे उच्च शिक्षा के लिए विदेश का रुख करते हैं. इस तरह काफी विदेशी मुद्रा भारत से बाहर चली जाती है. उच्च शिक्षा के सुधार पर केंद्रित मशाला कमिटी ने पांच साल पहले ही ध्यान दिलाया था कि वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में एक बड़ी चुनौती देश के उच्च शिक्षा संस्थानों को विश्वस्तरीय बनाने की है. लेकिन, शिक्षक-छात्र अनुपात, शोध-पत्रों के प्रकाशन, विदेशी शिक्षक और छात्रों की मौजूदगी, शैक्षिक साख आदि के मामले में देश के संस्थान पश्चिमी मुल्कों की कौन कहें, पड़ोसी चीन व जापान से भी पिछड़े हैं, जबकि ऐसे ही आधारों पर इन संस्थानों की श्रेष्ठता तय की जाती है. इसलिए ऐसे वक्त में, जब विकास के नारे पर चुनाव लड़ कर पार्टियां नयी सरकार के गठन में जुटी हैं, हमारी एक बड़ी प्राथमिकता विश्वस्तरीय उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या तेजी से बढ़ाने की भी होनी चाहिए.

खाद्य सुरक्षा पर सुस्त सरकारी तंत्र

बिहार में खाद्य सुरक्षा को लेकर चिंता पैदा होना स्वाभाविक है. इसके तहत गरीब परिवारों को सस्ती दर पर अनाज मिलना अब तक सुनिश्चित नहीं हो सका है. खाद्य सुरक्षा को लेकर राष्ट्रीय कानून है. इस कानून के तहत शहरी और ग्रामीण, दोनों क्षेत्रों के गरीब परिवारों को भुसमारी से बचाना सरकार की जवाबदेही है. इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा योजना शुरू की गयी. इस उम्मीद के साथ कि अब कोई गरीब भूखा नहीं सोयेगा. गरीबों को फरवरी माह से दो रुपये किलो की दर से गेहूँ और तीन रुपये किलो की दर से चावल मिलना था. राज्य सरकार ने यह जिम्मेवारी तो ली. लेकिन अपना सिस्टम दुरुस्त नहीं कर पायी. इसी का नतीजा है कि तीन माह बीत जाने के बाद भी बिहार में राशन दुकानदारों से लेकर गरीब उपभोक्ता तक संशय में हैं. इसे सरकारी तंत्र की विडंबना ही कहेंगे कि राज्य सरकार के गोदामों से गरीबों के लिए अनाज निकला, दुकानदारों तक पहुंचा, पर अनाज लेनेवालों की पहचान नहीं हो पायी जिससे वितरण नहीं हो सका. सामाजिक, आर्थिक और जाति पर आधारित जनगणना के जरिये जिन परिवारों को इस योजना का लाभ लेने के लिए चुना गया, उन्हें इसके लिए नया राशन कार्ड उपलब्ध कराया जाना था. इस काम में तंत्र विफल रहा. नया राशन कार्ड इन परिवारों को नहीं मिल पाया, जबकि इस काम को फरवरी के पहले ही पूरा लेना था. हालांकि अनाज आवंटन में भी खिंचब हुआ है, लेकिन देर से मिला अनाज भी गरीब लाभुकों को मिल जाता, तो एक अच्छी बात होती. यह योजना उतनी ही जनकल्याणकारी है, जितनी कि मनरेगा. मनरेगा भी केंद्रीय कानून है जो रोजगार की गांटी देने के लिए लागू हुआ, लेकिन सिस्टम ने इसे फेल कर दिया. नतीजा हुआ कि मजदूरों को इस योजना पर भरोसा नहीं रहा. खाद्य सुरक्षा की सफलता को लेकर पहले से आशंकाएं जतायी जाती रही हैं. अब, इसे लागू करने में जिस तरह की लापरवाही उजागर हुई है, उसने इन आशंकाओं को बल दिया है. हम गांरटी देनेवाले कानून और योजना तो बनाते हैं, उसके जरिये जताा को लाभ और उसके कल्याण की उम्मीद तो जताते हैं, लेकिन उन्हें सही-सही लागू करने की गांरटी हमारे पास नहीं है. इस स्थिति से सरकारी तंत्र को बाहर निकालना पहली बड़ी जरूरत है.

कुछ अलग सोचो, अठार सांड छत पर चढ़ जाये...

रुसवा साहब वैसे तो शायर हैं, पर एक जमाने में उन्होंने सहाफत भी की थी. मजहूरों में. हुआ यूं था कि वह सपाट लहजे में खड़ी शायरी करते थे. सीधी, पर गहरी. मुशायरों में खूब दाव पाते थे. मेहनताना भी अच्छा मिलता था. कुल मिला कर ज़िंदगी ठीकठाक चल रही थी. लेकिन, वक्त बदला, लोग बदले और मुशायरों भी बदल गये. कला से ज्यादा गला चलने लगा. शायर खड़ा हुआ कि कि 'तरन्नुम में... तरन्नुम में' का शोर मचने लगता. बस यहीं मात खा गये बेसुरे रुसवा साहब. उन्होंने मुशायरे छोड़ कर अपनी नज्में छपवानी शुरू कर दीं. मुशायरे से कम से कम दाल-रोटी चल जाती थी (तब दाल का वगीय चरित्र नहीं बदला था), मगर प्रकाशक की रॉयल्टी से चायवाले की उधारी भरनी भी मुश्किल थी (तब राजू चायवाला सिर्फ चायवाला हुआ करता था,

सत्य प्रकाश चौधरी
प्रभात खबर, रांची
satyajournalist@gmail.com
कम. वह अखबार में टिक तो पाये कम ही दिन, पर पत्रकारिता की राग-रज से वाकिफ हो गये. तब से लेकर आज तक, पण्ण पढ़ाई की दुकान पर जब भी मिलते हैं, पत्रकारिता के अपने ज्ञान की पूँडिया किसी न किसी बहाने सरकारना नहीं भूलते. आज सुबह भी उन्होंने यही किया. मगहरी का जोड़ा दबाया और बोले, “सोचो, अगर कोई सांड किसी छत पर चढ़ जाये तो?” मैंने कहा, “यह तो कब्र है!” वह यूं मुस्कराये मानो उन्हें मालूम हो कि मैं यही जवाब दूँगा. फिर पूछा, “कितनी बड़ी?” मैंने कहा, “यह तो इस पर है कि आदमी टीवी में है या अखबार में. अगर अखबार में हैं तो 10 लाइन. बड़ा लिफ्फाड़ होगा तो 20-30 लाइनें लिख देगा. लेकिन, टीवी के लिए दिन भर का मेसाल है. चार कैमरे लगाओ और बीच-बीच में आनेवाले खालीपन को भरने के लिए दो रिपोर्टर लगाओ जो कुछ भी अरल-बरल बोल कर सभा में बाँधें रहें. फिर पूरा चैनल मौज में. कोई दूसरी खबर ढूँढ़ने की जहमत नहीं.” “सांड लाइव” से ही दिन कट जायेगा.” रुसवा साहब की मुस्कान और गहरी हो गयी, बोले- “रह गये न वहीं जिसमें रखा जाता है दही. किस जमाने में हो मिथां? तुम अपने ही अखबार का हो लो, मेरा दावा है कि तीन पत्रे से कम नहीं छापेगा. एक पन्ने में दिनभर का घटनाक्रम. सांड कितने बज कर कितने मिनट पर कहां था, पूरी तफसील से बताओगे. वहां लगे मजमे का ब्योरा पेश करोगे. दूसरे पत्रे में कम से कम चार पशु-विशेषज्ञों से “खास” बातचीत होगी. इससे पहले सांड कहां-कहां छत पर चढ़ चुका है, इसके लिए पांच आदमी पूरा इंटरनेट खंगाल डालेंगे. तीसरे पत्रे में फोटो फ्रीचर. अलग-अलग कंपनियों से सांड की इतनी तसवीरें कि दीर्घका पाठुकोण का फोटो सेशन भी फीका लगे.” रुसवा साहब की बात सोलही आने सही थी. हर दिन, कोई न कोई ‘सांड’ टीवी से निकलता है और अखबारों के पत्रों पर गोबर करता चला जाता है.

कांग्रेस सबसे बड़े पराजय की ओर!

	
संजय कुमार	
डायरेक्टर, सीएसडीएस	
	
sanjay@csds.in	

पिछले दशकों में देश

की राजनीतिक

परिस्थितियां काफी

बदल गयी हैं. अब

कांग्रेस को वापसी के

लिए भाजपा के साथ-

साथ क्षेत्रीय पार्टियों

से भी पार पाना होगा.

इसलिए बड़ा सवाल

यही है कि क्या कांग्रेस

इस बार के पराजय के

बाद पुनः सत्ता में

वापसी कर पायेगी!

चिखुरी

चंचल
सामाजिक कार्यकर्ता
samtighar@gmail.com
अब एक एजेंसी को किराये पर ले लीजिए, वक्त पर सब चकाचक मिलेगा . लॉडस्पीकर, तंबू, भीड़. भीड़ ढोने वाले वाहन . कितनी टोपी, कितना बुर्का, किसको किधर बैठना है. कैमरा कहां-कहां लगना है. भीड़ को कब नारा लगाना है.

नाव हो गया. टेंसन खत्म. कल से फिर वही नून, तेल, लकड़ी. कहते हुए क्यूम मियां धप से खटिया पे गिरि और लेट गये. फातिमा ने बाबा से शिकायत की- इस उम्र में आप एजेंट बन रहे हैं, न दाना न पानी. दिनभर भूखे प्यासे गरमी ऊपर से जुलुम जोर, हुवां मदरसे पे न पेड़ न रुख. क्यूम ने करकट बदला- ना बिटिया! तू ना बुबूबू येही निजाम खालिर इस देश ने क्या-क्या नहीं सहा है. जेल, लाठी, फांसी, काला पानी, तब जांके देश आजाद भवा औ हमें ई फैसला करे क हक मिली का ही हम अपने मनमाजी क सरकार बनायें. खुद मुख्तारी के निजाम गांधी बाबा की देन है बिटिया. टाटा हो बिरला उनके वोट की कीमत गफूरन के वोट से ज्यादा कीमती ना हो. एक काम कर बिटिया हमके एक लोटा पानी दे दे औ लखन कहार के बुला लाव. कही देहे ऊ आपण बडकी चाकू लेहे आवे. फातिमा ने पानी दिया औ लखन कहार के घर की ओर मुड़ गयी. जब वह लौटी तब तक हबीब के नीम के नीचे महफिल जाम चुकी है. सब ने वोट दिया है कोई किसी को नहीं बता रहा कि किसने किसको वोट दिया, लेकिन जानते सब हैं. अब भला नीम की छंव को इस मतभेद से क्या लेना-देना. वह सब को सहला कर लासाहेब की दुकान की और बड़ जा रही है. वरना लालसाहेब क्यों चीखते- का हो पंचो, आज का कट रहा है? क्यूम ने वहीं से आवाज दी- तरबूज कट रहा है बेटा, मुंह में जीभ होय त पगहा समेत आय जा.

चिखुरी को हंसी आ गयी. लखन के गमछे पर केले का पत्ता बिजा. पत्ते पर तरबूज कटा. उमर दरजी ने ह्रिदायत दी कीन उपधिया की तरफ देखते हुए- एक एक... कोई ज्यादा ना लहै भैया. क्यूम चचा के मेहनत का फल है. क्यूम मुसकुरा दिष्ट. कीन को लगा कि यह तरबूज हिंदू ना है. उनके मुंह का जायका कई लोगों ने भांप लिया. चिखुरी ने कहा- उमर! ऊ बड़का टुकड़ा कीन के पकड़ा दे तो. कीन के काट दिया- नाही कक्का! हम तरबूज ना खाते, तुरते जुकाम हो जाई. नवल ने उस टुकड़े को लपक लिया, यह हमारी बिरादरी के नाम की है. तरबूज से सियासत कब निकल आयी किसी ने नहीं देखा. पर सियासत जेरें बहस हो गयी.

क्यूम ने कहा- चिखुरी काका! ई वाला चुनाव देखा! न सियासत की बात, न कोई मुल. बस हो हल्ला औ हो गया चुनाव. समुरा चुनाव न हुआ चुनी वाला का छान हो गयी. बीस हाथ लंबा औ बारह हाथ चौड़ा सरपत के छान. हां हो, हां हो कर के उठाये और छूहे पे धर के चले आवे.

असली परीक्षा तो नतीजों के बाद है

जब 16वौं लोकसभा का गठन हो जायेगा, तब विचारणीय प्रश्न यह होगा कि क्या संसद की कार्यवाही सुचारु रूप से चलेगी या फिर वही शोर-शराबा, हंगामा, संसदीय कार्यवाही स्थगित होना फिर से दिखेगा? आगामी लोकसभा और नये जनप्रतिनिधियों के सामने यही सबसे बड़ी चुनौती होगी कि वे संसदीय मर्यादाओं का निर्वाह करें या यूं कहें कि नये सांसदों को असली परीक्षा की घड़ी से तब गुजरना होगा जब संसदीय कार्यवाही शुरू होगी. फिलहाल जनता तो यही उम्मीद करती है कि पूर्व में शर्मसार कर देनेवाली घटनाएं फिर न घटें और गठबंधन सरकार हो या पूर्ण बहुमतवाली अकेली पार्टी की सरकार, वह अपने चुनावी वादे पूरे करे. लोकतांत्रिक देश को सही ढंग से चलाने के लिए यह अति-आवश्यक है. वादे करते समय तो सारी पार्टियों ने हामी भरी है. अब नतीजों के बाद देखना यह है कि कौन कितने पानी में है.

निजी स्कूलों की चल रही मनमानी

शिक्षा के पेशे में मुनाफाखोरी की बेतहाशा लिप्सा ने स्कूल प्रबंधनों का विवेक हर लिया है. आजकल निजी स्कूल मनमानी करने लगे हैं. मेरी राय में शिक्षा और स्वास्थ्य के पेशे में सिर्फ मिशनरियों को ही इजाजत दी जानी चाहिए. कई स्कूल अपनी मनमर्जी से फीस वसूलते हैं, कभी इस मद में, तो कभी उस मद में. अभिभावकों की मनबुरी यह है कि वे अपनी जरूरतों से समझौता करके इनकी फीस भरें, आखिरकार उन्हें अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा जो देनी है. कोई मां-बाप कभी नहीं चाहेंगे कि उनकी संतान जिनगी की रौद्र में उनकी किसी कोताही की वजह से पिछड़ जाये. इसीलिए निजी स्कूलवाले उनकी विवशता का फायदा उठाते हैं. कुछ निजी शिक्षण संस्थानों की अंधेरागढ़ी से लोगों को बचाने के लिए सरकारी को ठेस कदम उठाने की जरूरत है, तभी समाज का और आम आदमी का भला हो सकेगा.

राम प्रसाद, रायगढ़

यदि एंजिट पोल और विभिन्न सर्वेक्षणों के नतीजे सही हैं, तो 2014 के चुनाव में कांग्रेस अब तक के सबसे बड़े पराजय की ओर अग्रसर है. हालांकि वास्तविक नतीजों के लिए हमें 16 मई तक इंतजार करना होगा, लेकिन विभिन्न एंजिट पोल और सर्वेक्षणों के नतीजों का औसत निकालें, तो कांग्रेस को 22 से 24 फीसदी मत मिलने और 16वौं लोकसभा में इसके 100 से भी कम सांसद पहुंचने का अनुमान है. इससे पहले कांग्रेस को सबसे कम 114 सीटें 1999 के चुनाव में मिली थी. यदि कुल मतों में हिस्सेदारी की बात करें तो कांग्रेस को सबसे कम 25.8 फीसदी मत 1998 के चुनाव में मिले थे.

इस बार के चुनाव प्रचार में, भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार नरेंद्र मोदी ने अपने कई भाषणों में ‘कांग्रेस मुक्त भारत’ का आह्वान किया था. हालांकि कांग्रेस की सबसे बड़ी पराजय की संभावनाओं के बावजूद, कुछ विश्लेषक मानते हैं कि हार-जीत तो हर चुनाव में होते ही रहते हैं और कांग्रेस के आगामी चुनावों में फिर से उभरने की उम्मीद बरकरार है. मैं भी इस चुनाव में कांग्रेस की सबसे बड़ी पराजय को उसके अंत की संभावनाओं से जोड़ मतों नहीं देख रहा हूं, फिर भी मुझे लगता है कि उसके लिए पांच साल बाद सत्ता में लौटना बेहद मुश्किल होगा. हालांकि भारत के चुनावी इतिहास पर गौर करें तो कांग्रेस हर बड़ी पराजय के बाद दोबारा उभरी है और पुनः सत्ता में पहुंची है, लेकिन इस बार देश की राजनीतिक परिस्थितियां कई मायनों में पहले से अलग हैं. कांग्रेस कभी देश की सबसे मजबूत राजनीतिक ताकत थी और बहुरंगी भारत की प्रतिनिधि पार्टी मानी जाती थी. लेकिन आम लोगों के जेहन में उभरनेवाली उसकी बहुरंगी छवि 1990 के दशक में धूमिल होने लगी, खास कर मंडल के दौर के बाद. और अब ताजा रुझान संकेत दे रहे हैं कि कांग्रेस अपनी बहुरंगी छवि के कई रंग पूरी तरह खो चुकी है और उन रंगों को अपने साथ फिर से जोड़ना उसके लिए मुश्किल काम होगा.

1967 में हुए विधानसभा चुनावों में कई राज्यों में हार का मुंह देखने के बावजूद, 1971 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस ने बड़ी जीत हासिल की थी. तब पार्टी को 44 फीसदी वोट और 352 सीटें मिली थीं. राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस को पहली बड़ी चुनौती का सामना 1977 के आम चुनाव में करना पड़ा था, जब इसे सिर्फ 34 फीसदी वोट मिले थे और 154 सीटों से ही संतोष करना पड़ा. लेकिन 1980 के चुनाव में कांग्रेस ने फिर

नाव हो गया. टेंसन खत्म. कल से फिर वही नून, तेल, लकड़ी. कहते हुए क्यूम मियां धप से खटिया पे गिरि और लेट गये. फातिमा ने बाबा से शिकायत की- इस उम्र में आप एजेंट बन रहे हैं, न दाना न पानी. दिनभर भूखे प्यासे गरमी ऊपर से जुलुम जोर, हुवां मदरसे पे न पेड़ न रुख. क्यूम ने करकट बदला- ना बिटिया! तू ना बुबूबू येही निजाम खालिर इस देश ने क्या-क्या नहीं सहा है. जेल, लाठी, फांसी, काला पानी, तब जांके देश आजाद भवा औ हमें ई फैसला करे क हक मिली का ही हम अपने मनमाजी क सरकार बनायें. खुद मुख्तारी के निजाम गांधी बाबा की देन है बिटिया. टाटा हो बिरला उनके वोट की कीमत गफूरन के वोट से ज्यादा कीमती ना हो. एक काम कर बिटिया हमके एक लोटा पानी दे दे औ लखन कहार के बुला लाव. कही देहे ऊ आपण बडकी चाकू लेहे आवे. फातिमा ने पानी दिया औ लखन कहार के घर की ओर मुड़ गयी. जब वह लौटी तब तक हबीब के नीम के नीचे महफिल जाम चुकी है. सब ने वोट दिया है कोई किसी को नहीं बता रहा कि किसने किसको वोट दिया, लेकिन जानते सब हैं. अब भला नीम की छंव को इस मतभेद से क्या लेना-देना. वह सब को सहला कर लासाहेब की दुकान की और बड़ जा रही है. वरना लालसाहेब क्यों चीखते- का हो पंचो, आज का कट रहा है? क्यूम ने वहीं से आवाज दी- तरबूज कट रहा है बेटा, मुंह में जीभ होय त पगहा समेत आय जा.

चिखुरी को हंसी आ गयी. लखन के गमछे पर केले का पत्ता बिजा. पत्ते पर तरबूज कटा. उमर दरजी ने ह्रिदायत दी कीन उपधिया की तरफ देखते हुए- एक एक... कोई ज्यादा ना लहै भैया. क्यूम चचा के मेहनत का फल है. क्यूम मुसकुरा दिष्ट. कीन को लगा कि यह तरबूज हिंदू ना है. उनके मुंह का जायका कई लोगों ने भांप लिया. चिखुरी ने कहा- उमर! ऊ बड़का टुकड़ा कीन के पकड़ा दे तो. कीन के काट दिया- नाही कक्का! हम तरबूज ना खाते, तुरते जुकाम हो जाई. नवल ने उस टुकड़े को लपक लिया, यह हमारी बिरादरी के नाम की है. तरबूज से सियासत कब निकल आयी किसी ने नहीं देखा. पर सियासत जेरें बहस हो गयी.

क्यूम ने कहा- चिखुरी काका! ई वाला चुनाव देखा! न सियासत की बात, न कोई मुल. बस हो हल्ला औ हो गया चुनाव. समुरा चुनाव न हुआ चुनी वाला का छान हो गयी. बीस हाथ लंबा औ बारह हाथ चौड़ा सरपत के छान. हां हो, हां हो कर के उठाये और छूहे पे धर के चले आवे.

राजनीति गयी ठेंगे पे औ चुनाव गया ठेके पे. नवल उपाधिया की आंख गोल हो गयी. ठेके पे? चुनाव ठेके पे? ऊ कैसे?

महू का पत्रकार जगा, उसने समझाना शुरू किया. पुराने जमाने में किसी काम में पूरा गांव इकट्ठा होता था और घर-घर में गेहूं बांट दिया जाता था. हर घर में पिसाई होती थी. गांवभर के बिस्तर और चारपाई इकट्ठी होती थी. कुम्हार बरतन देता था मुसहर दोना-पत्तल देता था. लेकिन आज क्या है बाबू? सब ठेके पे. खाना बनाने से लेकर टेंट तक. ठेके पे हो रहा है की नहीं? उसी तरह इस बार का चुनाव भी शुरू हुआ है. इसे अंगरेजी में कहते हैं ‘इवेंट मनेजमेंट’, जैसे फिक्म में होता है. भीड़ किराये पर. उनके कपड़े किराये पर. भीड़ क्या बोलेंगी वह भी सिखा दिया जाता है. जो ठेका लेता रहा उसे अब तक ‘सप्लायर’ कहा जाता रहा. अब उसे इवेंट मैनेजर कहा जाने लगा है.

चिखुरी चौंके- ऐसा सच में हमने तो सोचा था कि ए थो. कैसे होता है जरा खुल कर बताइये तो. महू वजनी हूए- अब एक एजेंसी को किराये पर ले लीजिए. प्रति रेली के हिसाब से पमेंट कर दीजिए. वक्त पर सब चकाचक मिलेगा. तंबू, लॉडस्पीकर, भीड़. भीड़ ढोने वाले वाहन. किस उम्र की भीड़, किस लिंग की कितनी भीड़. क्या पहनावा. कितनी टोपी, कितना बुर्का, किसको किस तरफ बैठना है. कैमरा कहां-कहां लगना है. भीड़ को कब नारा लगाना है, क्या बोलना है सबकुछ पहले से तयशुदा. अब इसे दुनिया को भी दिखाना है. इसके लिए ‘डिब्बा’ वालों को खरीद लो. बने काम पिट. केवल खेल पैसे का. हरें लगे न फिटकरी रंग चोखा.

नवल उपाधिया की आंख गोल हो गयी- हे भगवान! लालसाहेब ने नवल को चुटकी काट दिया. त इसमें चौकनेवाली का बात है. अपने गांव मां देख, पहले रामायण होत रहा, लोग घंटा घंटा मन से गाते रहे, अब वो भी ठेके पे चलने लगा है. पहले नेता आते रहे घर-घर, गांव-गांव मिलते रहे. दुखदई समझते रहे. अब देखो नेताजी उड़नखटीला से उतरे बोले, चलता बने. कहां गयी राजनीति? जनता से दूर रह कर जनता की राजनीति चलानेवाले छल कर रहे हैं. इसे तोड़े बगैर हम सियासत को सीधो नहीं कर सकते. रेंडियो पर बज रहा है- मोसे छल किये जाये...

‘कुल चार सवाल हैं, हर सवाल का जवाब एक-दूसरे से भिड़ा पड़ा है. लंगड़ी भिन्न माफिक. इस मुल्क को इस सवाल का हल ढूढ़ना होगा.’ चिखुरी बुदबुदाते रहे...

दूसरों के लुक को लेकर भी प्रतिद्वंद्विता है. प्रवेश परीक्षाओं में असफल होने के बावजूद ये पैसों के दम पर अच्छे कॉलेजों में प्रवेश लेते हैं. वहां भी अपनी पढ़ाई के प्रतियोगिता में घसीटें गंभीर हैं, यह देखना हो तो वहां के पब, डिस्को में चले जायें. अब खुद विचार करें कि क्या इस तरह हम बच्चों को मजबूत बना रहे हैं! इममें ही से कुछ अंतर्मुखी बच्चे असफल होने पर आत्महत्या जैसा कदम उठा लेते हैं. वे एक बार यह भी नहीं सोचते कि उनके माता-पिता का क्या होगा? अंत में मेरा एक निवेदन है. जैसे आप सिनेमा और मॉल जाते हैं, वैसे ही कभी-कभी किसी झुग्गी बस्ती में घूम आये और वहां का जीवन देखें. यहां बच्चे बिजली, पानी, पेपर, कपड़े, किताबें सभी के लिए संघर्ष करते नजर आयेंगे, लेकिन जीवन के प्रति उनका उत्साह कभी कम नहीं होता. वे निरंतर उस पाने के लिए प्रयासरत रहते हैं.

स्कूल प्रबंधन की मनाही के बावजूद बच्चे गाड़ी से स्कूल जाते हैं. आज के बच्चों में पढ़ाई तो पढ़ाई, उममें कपड़ों के ब्रांड, मोबाइल और यहां तक कि

लीजिए पुरस्कार

राजकमल प्रकाशन

पत्र-लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए हम सर्वश्रेष्ठ पत्र लेखकों को पुरस्कृत करते हैं. आपके पत्रों का स्वागत है. पत्र में फोन नंबर भी दें.

■ पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल परिया, कोटक, रांची- 834001

■ मेल करें : ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है.
eletter@prabhatkhabar.in
■ फैक्स करें : 0651-2544006 पुर



से बड़ी जीत हासिल की. तब पार्टी को 43 फीसदी वोट के साथ 353 सीटें मिलीं. हालांकि 1989 के आम चुनाव में कांग्रेस को फिर झटका लगा, जब वीपी सिंह के नेतृत्व में बने जनमोर्चा ने उसे कड़ी चुनौती दी. लेकिन 1991 में ही हम फिर कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार के गवाह बने. तब पार्टी को 37 फीसदी वोट मिले और यह 244 सीटें जीतने में सफल रही थी. बाद में कांग्रेस करीब दो दशकों तक (1996 से 2004) सत्ता से बाहर रही, लेकिन 2004 में यह फिर से केंद्र की सत्ता पर काबिज हुई और अगले दस साल तक सत्ता सत्ता सुख का आनंद लिया.

हालांकि 2004 और 2009 के चुनावों के बाद कांग्रेस सरकार बनाने में सफल रही, पर इसे पार्टी के दोबारा उभार के रूप में देखना सही नहीं होगा, क्योंकि उसे इन चुनावों में 30 फीसदी से भी कम वोट मिले थे. इन चुनावों के बाद कांग्रेस के सत्ता में पहुंचने की बड़ी वजह यह थी कि इसने अन्य पार्टियों के साथ गठबंधन के लिए इच्छाशक्ति दिखायी और समझौते को तैयार हो गयी. मेरा मानना है कि कांग्रेस के लिए बड़ी मुश्किलों का दौर 1996 के आम चुनाव में ही शुरू हो गया था, जब मंडल के बाद के दौर में पार्टी का मत प्रतिशत काफी नीचे चला गया था और कई क्षेत्रीय/ राज्यस्तरीय पार्टियों का उदय हुआ, जिन्हें अलग-अलग जातियाँ/ समुदायों के मतदाताओं का व्यापक समर्थन मिला.

1996 से पहले के चुनावी इतिहास में कांग्रेस पराजय के बाद दोबारा जीत हासिल करने में इसलिए सफल हो सकी थी, क्योंकि तब उसे मुख्यतः राष्ट्रीय पार्टी/ गठबंधन की चुनौतियां से ही पार पाना था. लेकिन मंडल के बाद के दौर में अलग-अलग राज्यों में वहां की क्षेत्रीय/ राज्यस्तरीय पार्टियां कांग्रेस की राह में बड़ी चुनौती पेश करने लगीं. इस वक्त भी देश की राजनीतिक स्थिति पर गौर करें तो कांग्रेस को पीछे

धकेलने की कोशिशें दोतरफा हो रही हैं. एक ओर राष्ट्रीय स्तर पर जहां भाजपा की ओर से ‘कांग्रेस मुक्त भारत’ का आह्वान हो रहा है, वहीं राज्यों में क्षेत्रीय पार्टियां भी उसे उभरने का कोई मौका नहीं दे रही हैं.

क्षेत्रीय पार्टियों के कारण जहां दलितों, अन्य पिछड़ी जातियों और मुसलमानों के बीच कांग्रेस का जनाधार खत्म हो रहा है, वहीं राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा के उभार ने साबित किया है कि आर्य जातियों के बीच भी कांग्रेस की लोकप्रियता खत्म हो गयी है. ओबीसी के बीच कांग्रेस का जनाधार खिसकने की शुरुआत 1990 के दशक के मध्य में हुई, जब उत्तर प्रदेश में बसपा एक बड़ी राजनीतिक ताकत के रूप में उभरी. मंडल के बाद के दौर में ओबीसी के बीच क्षेत्रीय पार्टियों की पकड़ लगातार बढ़ती गयी और कांग्रेस अपने इस समर्थन आधार को वापस पाने में सफल नहीं हो सकी. अब इस चुनाव में संकेत हैं कि अन्य पिछड़ी जातियों के मतदाताओं ने बड़ी संख्या में भाजपा के पक्ष में मतदान किया है. यही नहीं, मौजूदा रुझान इशारा कर रहे हैं कि दलितों के बीच कांग्रेस के बचे-खुचे जनाधार में भी भाजपा ने मजबूत पैठ बनायी है.

जहां तक मुसलमानों के बीच पकड़ का सवाल है, इस बात के विश्वसनीय आंकड़े मौजूद नहीं हैं कि 1970 और 1980 के दशक में कितने फीसदी मुसलमानों ने कांग्रेस के पक्ष में मतदान किया था, लेकिन 1990 के दशक में राष्ट्रीय स्तर पर केवल एक तिहाई कांग्रेसियों ने ही कांग्रेस को वोट दिया था. अगले दो दशकों में धीरे-धीरे मुसलमानों का समर्थन भी कांग्रेस से दूर होता गया और क्षेत्रीय/ राज्यस्तरीय पार्टियों ने इस पर अपनी पकड़ बढ़ायी. हालांकि ऐसे संकेत नहीं हैं कि 2014 में कांग्रेस को मुसलमानों के वोट 2009 की तुलना में कम मिलें हैं, लेकिन मुसलमानों के बीच उसकी लोकप्रियता बढ़ने के भी संकेत नहीं हैं. कई राज्यों में आज भी क्षेत्रीय पार्टियां ही मुसलमानों की पहली पसंद हैं.

कुल मिलाकर कांग्रेस भले ही 1970 और 1980 के दशक की या फिर 1996 की पराजय के बाद पुनः सत्ता पाने में सफल रही, लेकिन पिछले दशकों में देश को राजनीतिक परिस्थितियां काफी बदल गयी हैं. अब कांग्रेस को वापसी के लिए भाजपा के साथ-साथ क्षेत्रीय पार्टियों की चुनौतियां से भी पार पाना होगा. इसलिए बड़ा सवाल यही है कि क्या कांग्रेस इस बार के पराजय के बाद पुनः सत्ता में वापसी कर पायेगी, और यदि हां, तो इसमें कितना लंबा वक्त लगेगा!

सुभाषित
साधु गांठि न बांधई, उदर समाता लेय। अगो-पीछे हरि खंडे, जब मांगे तब देय।। - अर्थात्- साधु गांठ में कभी नहीं बांधता, क्योंकि वह जानता है कि उसके अगो-पीछे ईश्वर है. साधु जब मांगता है, ईश्वर उसे पूरा कर देता है.

अमृतमय जीवन की तुष्टि

अमृत, पारस और कल्पवृक्ष, यह तीनों महान तत्व सर्वसाधारण के लिए सुलभ हैं. हम जितना उनसे दूर रहते हैं, उतने ही ये हमारे लिए दुर्लभ हैं. परंतु जब हम इनकी ओर कदम बढ़ाते हैं, तो यह अपने बिल्कुल पास, अत्यंत निकट आ जाते हैं. जिस ओर मुंह न हो, उधर की चीजों का कोई अतिरक्त दृष्टिगोचर नहीं होता. पीठ पीछे क्या वस्तु रखी हुई है, इसका तप नहीं चलता, किंतु जैसे ही हम उस ओर मुंह फेरते हैं, पीछे की चीज जो कुछ क्षण पहले तक अदृश्य थी, तुरंत दिखाई देने लगती है. सच्ची चाहना की कसौटी यह है कि अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने की लामन अतःकरण की गहराई तक समायी हुई हो. विश्व में कोई वस्तु ऐसी नहीं है कि मनुष्य सच्चे मन से इच्छा करने पर उसे प्राप्त न कर सके. लोभवश अनावश्यक वस्तुओं के संचय की लालसा में प्रकृति के नियम कुछ बाधक भले बनें,

परंतु आत्मिक सद्गुणों के विकास द्वारा सात्विक आनंद प्राप्त करने की आकांक्षा तो सर्वथा उचित और आवश्यक होने के कारण पूर्णतया सरल है. उसकी पूर्ति में ईश्वरीय सहायता मिलती है. आत्म-कल्याण करनेवाले सत्प्रयासों में भगवान सदा सहयोग देते हैं. अमृत, पारस और कल्पवृक्ष मनुष्य के लिए पूर्णतया सुलभ हैं, बशर्ते उन्हें प्राप्त करने का सच्चे मन से प्रयत्न किया जाये. जब इस प्रकार का हमारा दृष्टिकोण निश्चित हो जाता है, तो जीवन अत्यंत पवित्र, निर्मल, निष्पाप, शांतिदायक एवं आनंदमय हो जाता है. यही अमृत है.

■ **पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य**

	
कांग्रेस	
के संभावित खराब प्रदर्शन को राहुल गांधी में नेतृत्व क्षमता की कमी के तौर पर नहीं लिया जाना चाहिए.	
कमलनाथ, कैद्रीय संत्री	
	
हार	
की जवाबदेही से सोनिया और राहुल गांधी को बचाने के लिए सत्तारूढ़ दल कोई बलि का बकरा खोज लेगा.	
प्रकाश जावडेकर, भाजपा प्रवक्ता	

चुनाव आयोग की कोशिशें रंग ल